# शिक्षा सुधारों की बुनियाद

प्रेमपाल शर्मा

शिवरतन थानवी उन गिने-चुने शिक्षाविदों में हैं जिनके लिए शिक्षा ही जीवन है और संपूर्ण जीवन अनवरत शिक्षा पाने, समझने का नाम है। 'भारत में सुकरात' पुस्तक भी इसकी गवाह है। उन्हें उन शिक्षाविदों में कभी नहीं गिना जा सकता, जिनके बड़े-बड़े सिद्धांत शिक्षा के दुर्ग को और अभेद्य बना देते हैं। भारतीय संदर्भ में हुआ भी यही और इसीलिए शिक्षक के रूप में जुड़े अधिकांश लोग या तथाकथित बीएड कर रहे छात्रों से उनके प्रिय शिक्षाविदों के नाम पूछे जाएं तो इस पुस्तक में शामिल दर्जनभर प्रेरक नामों में से कोई शामिल नहीं हो पाएगा। पिछले दस-बीस बरस का मेरा तो एक पाठकीय अनुभव यही है। एक नाम जरूर कभी-कभी रटंत शैली में शिक्षाकर्मी लेते हैं वह है सर्वपल्ली राधाकृष्णन जो राष्ट्रपति भी रहे हैं लेकिन नाम लेने का कारण उनके जन्मदिन को वर्ष दर वर्ष शिक्षक दिवस के रूप में मनाना, घोषित करना ज्यादा है, बजाय कि उनकी स्कूली शिक्षा के संदर्भ में किसी मूल अवधारणा की जानकारी हो। देशभर में हमारी निरंतर खोखली होती जा रही शिक्षा व्यवस्था में यह भी कम चौंकाने वाली बात नहीं है कि कैसे प्रतीक चिन्ह भी समझदारी से नहीं चुने गए।

मुझे व्यक्तिगत रूप से भारत में सुकरात जैसी पुस्तकें ज्यादा रोचक और प्रेरक लगती हैं। मैं शिक्षा का न अध्येता हूं, न प्राध्यापक, मात्र एक पाठक हूं वह भी हाशिये का। कई टेढ़े-मेढ़े रास्ते से गुजरता हुआ और खांचों से प्राप्त डिग्रियां लेकर पिछले कुछ वर्षों से 'शिक्षा' के चौराहे पर ठिठका हुआ खड़ा हूं। स्पष्ट शब्दों में कहूं तो राजस्थान का ऋणी हूं इस यात्रा में रास्ता दिखाने के लिए दौलत सिंह कोठारी, वी. वी. जैन, अनिल बोर्दिया, रोहित धनकर, राजाराम भादू, शिवरत व रमेश थानवी, अनौपचारिका, शिक्षा विमर्श और उदयपुर बीकानेर आदि से निकलने वाली एकाध पत्रिकाएं और। हकीकत यह है कि गिजूभाई बधेका को भी मैंने इन सबको पढ़ते हुए ही जाना और फिर खरीदी उनकी दर्जनों पुस्तकें जो वाग्देवी प्रकाशन (बीकानेर, राजस्थान) ने छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में छापी थी। वाग्देवी की ही एक और मेरी प्रिय पुस्तक है जे. पी. नायक की 'शिक्षा आयोग और उसके बाद' इस पुस्तक ने मुझे दौलत सिंह कोठारी का सदा के लिए भक्त बना दिया। अनौपचारिका पत्रिका, जयपुर का एक संपूर्ण अंक भी उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर निकला था। भारतीय भाषाओं और शिक्षा व्यवस्था की डूबने-उतराने की जब भी कथा लिखी जाएगी, वैज्ञानिक, शिक्षाविद, प्रशासक दौलतसिंह कोठारी के उल्लेख के बिना वह अधूरी रहेगी।

शिवरतन जी की यह पुस्तक इन अर्थों में उस कमी को पूरा करती है, जिसके बिना न आपको छात्र माना जा सकता है न शिक्षक। एक और कदम बढ़कर इसमें ऊपर लिखे नामों, पत्रिकाओं, पुस्तकों के अलावा हमारे समय के जाने-माने शिक्षाविद् कृष्ण कुमार, मान्तेसरी, डेविड ऑसबरो और नीलबाग स्कूल, मास्टर मोतीलाल, शिवबालक राम और मिथिलेश कुमारी मुखर्जी आदि भी शामिल है। पुस्तक व व्यक्ति केंद्रित शैक्षिक निबंध शीर्षक ठीक ही दिया है पुस्तक को।

**पुस्तक :** 'भारत में सुकरात'
**लेखक** : शिवरतन थानवी
**प्रकाशकः** वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
**संस्करण** : 2016; **मूल्यः** 240 रुपये

पुस्तक खोलते ही पाठक का सामना ऑर्बिटिंग प्रोफेसर वी. वी. जॉन से होता है। इस छोटे से लेख को हिंदी साहित्य के उत्कृष्ट रेखाचित्रों में शुमार किया जा सकता है। मात्र तीन पृष्ठों में शिक्षाविद वी. वी. जॉन जी की जीवनी भी, जीवन भी। पैदा केरल में हुए लेकिन कार्यक्षेत्र पूरा भारत- त्रिभुर, त्रिचन्नापल्ली, वैलूर से शुरू करके उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, दिल्ली। सचमुच के 'ऑर्बिटिंग प्रोफेसर' और इसीलिए वी. वी. जॉन ने अपनी किताब का नाम यह रखा। यहां शीर्षक बदलते हुए घुमक्कड़ या घुमंतू प्रोफेसर भी रखा जा सकता था। शिवरतन जी का कहना सही है कि जोधपुर के वाइस चांसलर के रूप में जो ख्याति उन्हें मिली, उसे पूरा देश याद करता है। अज्ञेय जैसे प्रखर हिंदी कवि, उपन्यासकार को 'राइटर इन रेजीडेंस' के पद पर जोधपुर विश्वविद्यालय में ले आए। प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह की नियुक्ति हुई। उसके बाद नामवर सिंह जेएनयू गए। प्रोफेसर वाइ. के अलघ समेत देशभर के जाने-माने मनीषी विद्वानों को प्रोफेसर जॉन जोधपुर विश्वविद्यालय के सभी विभागों में लेकर आए थे। पुस्तकालय सुधारा, पाठ्यक्रम बदले, शोध कार्य चमकाया और कक्षाई शिक्षण में जान डाल दी। उत्कृष्ट पुस्तकें हिंदी-अंग्रेजी में तैयार करवाईं। साथ-साथ भव्य भवनों का निर्माण और परिसर को हरे-भरे वृक्षों की ठंडी छाया भी दे दी और यह सब किया एक छोटे से कद के प्राणी प्रोफेसर जॉन ने (पृ. 12-13)।

एक भी शब्द इसमें अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। वर्ष 1998 में मुझे प्रशिक्षु रेल अधिकारियों के साथ जोधपुर विश्वविद्यालय देखने का सुयोग मिला था। मैंने तब तक प्रोफेसर जॉन और जोधपुर के बारे में सुना तो था लेकिन देखकर सचमुच दूसरे उभरते जेएनयू की याद आई। लंबा-चौड़ा परिसर, विभाग। लेकिन सभी सपने सच होते तो यह देश इतना कंगाल नहीं होता। नालंदा की तर्ज पर बौद्धिक संस्कृति का केन्द्र बनता जोधपुर, प्रोफेसर जॉन के बाद न जाने कहां गुम हो गया। पिछले वर्ष जेएनयू कई विवादों के केन्द्र में रहा है। कुछ तो होगा ही या है इस विश्वविद्यालय में इसके पाठ्यक्रम, शोध, समन्वय में जो इसे महत्वपूर्ण बनाता है। और यह भी कि क्यों कोई इसकी परछाई भी पटना, लखनऊ, भुवनेश्वर, भोपाल में नहीं खड़ी कर पाया। जोधपुर में रोपा प्रोफेसर जॉन का पौधा भी मात्र झाड़ी बनकर रह गया है। बावजूद इसके कि शुरुआत बहुत बुलंदी से हुई थी। देश की ज्यादातर संस्थाओं के पतन की एक से एक विकराल गाथाएं हैं। शिक्षा के कई सूत्र इस छोटे से लेख में हैं। जैसे पुस्तक का शीर्षक सुकरात प्रोफेसर जॉन को बेहद प्रिय थे। सुकरात की संवाद पद्धति का प्रयोग जॉन ने अपनी पुस्तक में किया है। प्रोफेसर जॉन का मूल मंत्र रहा - तीखे प्रश्नों का सामना करो, संवाद करो, छानबीन करो, सीखो, सिखाओ। छात्रों को प्रश्न करने की शक्ति दो यदि शिक्षक हो तो और लेखक हो तो पाठकों को प्रश्न करने की प्रेरणा।

शिवरतन थानवी का पूरा लेखन जीवन इन्हीं प्रश्नों की तलाश है और इसी क्रम में उन्होंने अपने प्रिय शिक्षाविद तलाशे हैं। अनिल बोर्दिया उन्हीं में से एक हैं। यह लेख अपेक्षाकृत बड़ा है लेकिन शैली वही - जीवन और कर्म का संगुम्फन। अनिल बोर्दिया पैदा तो इंदौर में हुए वर्ष 1934 में लेकिन शिक्षा हुई उदयपुर और दिल्ली में। और भारतीय प्रशासनिक सेवा में राजस्थान में रहे। केन्द्र में शिक्षा सचिव तो बने ही, 1977 में प्रौढ़ शिक्षा नीति के महानिदेशक भी रहे। 1986 की शिक्षा नीति का श्रेय भी अनिल बोर्दिया को जाता है। सेवानिवृत्ति के बाद 1992 में 'लोक जुंबिश' नामक कार्यक्रम राजस्थान सरकार की मदद से शुरू किया, जिसका उद्देश्य लोक भागीदारी, शिक्षक सम्मान व गांव-गांव शिक्षा का सार्वजनीकरण था। 2001 में दूसरा दशक कार्यक्रम शुरू किया। शिविरा पत्रिका, नया शिक्षक और टीचर टुडे के साथ-साथ लेखक शिवरतन थानवी की कहानी भी इसमें समान्तर चलती है। लेखक का कहना सही है कि शिक्षा की साधना में प्रबंधन में जो कुछ उदात्त है, सुन्दर है, सुघड़ है वह बोर्दिया के कर्तव्य में देखा जा सकता है (पृ.21)। शिक्षा प्रशासन से जुड़े हर व्यक्ति को बोर्दिया जी से सीखने की जरूरत है कि सारी राजनैतिक सीमाबंदी के बावजूद आपकी कोशिश कुछ तो जुम्बिश लाती ही है। निःसंदेह राजनैतिक सत्ताएं - केन्द्र की भी और राज्यों की भी कुछ और संवेदनशील, सजग, समर्थ और सही मायने में शिक्षित होती तो बोर्दिया जी के प्रयोग, कोशिशें राजस्थान समेत पूरी शिक्षा व्यवस्था का चेहरा बदल देतीं। गांधी यहां फिर याद आते हैं कि बड़ा परिवर्तन केवल राजनीति से ही संभव है और इसीलिए मैं राजनीति में हूं।

पूरी पुस्तक की पठनीयता बेजोड़ है। एक खण्ड में व्यक्तियों यानि कि प्रिय शिक्षाविदों पर दूसरे में मनपसंद पुस्तकों, पत्रिकाओं पर और तीसरा छोटा-सा परिशिष्ट। दूसरा खण्ड स्वाभाविक है थोड़ा बड़ा है लगभग बीस लेख। कृष्णकुमार, मान्तेसरी, नीलबाग स्कूल, शिक्षा विमर्श का मशहूर अध्यापक अंक आदि। कृष्णकुमार जी पर लिखे लेख को उचित ही शीर्षक दिया है - शिक्षा में संस्कारों की खोज। कृष्णकुमार जी के बहुत शिष्ट, संक्षिप्त परिचय के बाद उनके चार नेशनल लेक्चर्स शिक्षणीय क्या है? पाठ्यपुस्तकें और शैक्षिक संस्कृति, विभाजनकारी प्रणाली के निहितार्थ और प्राथमिक विद्यालय में पठन प्रक्रिया पर ध्यान दिलाया है। कृष्णकुमार जी को हमारे समय का अत्यंत प्रखर, संवेदनशील, आधुनिक शिक्षाविद मानने के बावजूद उन्होंने इस लेख में उनकी एक-दो स्थापनाओं पर प्रश्न उठाए हैं। एक - हर बुराई को उपनिवेशवाद के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। वह चाहे पाठ्यपुस्तकों का बोझ हो या विषयों का। ऐसी ही असहमति लेखक विक्टोरियन साहित्य के संदर्भ में उठाते हैं और दीवार के उस पार झांकने का आग्रह करते हैं। सचमुच ऐसी ही असहमतियां विचार का विस्तार करती हैं। स्वयं कृष्णकुमार का संपूर्ण लेखन इसका साक्षी है। साहित्य और शिक्षा का उन्हें सेतु कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं। सुभद्राकमारी चौहान, महादेवी वर्मा पर उनके व्याख्यान हैं या राजसमाज शिक्षा से लेकर चूड़ी बाजार में लड़की - सभी में भाषा, विचार की एक ताजगी का नाम है कृष्णकुमार।

एक अच्छे लेखक की पहचान यह भी है कि वह अपने समय के प्रश्नों का कितना और कैसे सामना करता है। दूसरे खण्ड में शामिल राजनीति विज्ञान का शिक्षण और व्यंग्य, इसी का उदाहरण है। पाठकों को याद होगा देश की संसद और सड़क पर वर्ष 2012 में एक कार्टून ने हंगामा बरपा दिया था। कार्टून भी 1947 के तुरंत बाद संविधान निर्माण की प्रक्रिया का एक अंकन और हंगामा हुआ 2012 में। भारतीय राजनीति और समाज का भी खोखलापन जाहिर था चारों ओर। लेकिन सबसे अच्छा काम किया था 'शिक्षा विमर्श' पत्रिका ने। एक बड़ा विशेषांक निकालकर। मेरा सबसे प्रिय अंक। बहस का हर पक्ष इसमें शामिल था। संसद की पूरी बहस, कृष्णकुमार (तत्कालीन निदेशक, एनसीईआरटी) का ललिता गुप्ता द्वारा लिया गया लम्बा साक्षात्कार और बहस, झगड़े में शामिल सभी विद्वानों- प्रभात पटनायक, पीटर डिसूजा, रोमिला थापर, रामचंद्र गुहा, अपूर्वानंद, हिमांशु पण्ड्या, मनीष जैन, साधना सक्सैना, मुकुल प्रियदर्शिनी के साथ-साथ राजनीति विज्ञान की इस पुस्तक के सलाहकार और सूत्रधार रहे योगेन्द्र यादव का लम्बा लेख। योगेन्द्र यादव की टिप्पणी जो शिवरतन जी ने अपने लेख में शामिल की है, गौर तलब है, ''अम्बेडकर वाला कार्टून तो महज बहाना है, सांसदों की असली परेशानी कार्टूनों में उभरती उनकी खुद की छवि को लेकर है।'' इस लेख को पढ़कर पूरा विवाद और उसकी निरर्थकता सामने आती है।

'शिक्षक क्या पढ़े, क्यों पढ़े' एक और जरूरी लेख है और एक शिक्षक के नाते शिवतरन जी ने अपनी चिंताएं विस्तार से सामने रखी हैं। अकेले इस लेख में उल्लिखित पुस्तकों, शिक्षाविदों को भी जाने लें तो हमारे बीएड पाठ्यक्रमों का उद्धार हो सकता है। लेखक के शब्दों में जॉन डिवी, मान्तेसरी, गिजूभाई, ए. एस. नील, ईवान इलिच, पावलो फ्रेरे, जॉन हाल्ट के साथ-साथ कालूलाल श्रीमाली, डी. एस. कोठारी, यशपाल, कृष्णकुमार, जलालुद्दीन, वी. वी. जॉन, जे.पी.नायक, दयाल चंद सोनी को हम सबको पढ़ने की जरूरत है।

'अत्मकथा एक अध्यापिका की' साहित्यिक जीवनी का नमूना है। भारतीय समाज में लड़कियों की शिक्षा के साथ-साथ राजस्थानी समाज की भी झांकी। भांजी पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (जानी मानी अनुवादक) के सौजन्य से सामने आई आत्मकथा 'मित्थल मौसी का परिवार पुराण'। हम शिवरतन जी का आभार मानेंगे जो इतने रोचक ढंग से इस प्रसंग को सामने लाए। यही रोचकता, प्रश्नाकुलता और बैचेनी शिक्षक रामलाल की व्यथा-कथा में है। 'न पढ़ने की आदतें' की चिन्ता उनके कई लेखों में है। प्राक्कथन में भी यह बात रेखांकित की गई है कि शिक्षकों में पढ़ने की आदत बहुत कम है। वे सलाह देते हैं कि उन्हें अधिक से अधिक पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं पढ़नी चाहिए तभी वे योग्य शिक्षक बनेंगे। न केवल शिक्षक, माता-पिता भी पढ़ें। शिक्षा साहित्य और अन्यान्य विषयों में पढ़ने की रुचि जितनी विस्तृत होगी उतने ही सार्थक और प्रभावी शिक्षक वे बन सकेंगे।

ऐसी पुस्तकें दूर-दूर तक कैसे पहुंचे ऐसी चिन्ता जरूर पिछले दिनों सताती रही है। प्रकाशक इसका पेपर बैक संस्करण निकालें तो ऐसी पुस्तकों में छुपे मुद्दों, उद्देश्य को फैलने, फैलाने में कुछ तो मदद मिलेगी ही। ◆

**लेखक परिचयः** कथाकार एवं लेखक हैं। शिक्षा पर लेखन एवं चिन्तन उनके प्रिय विषय हैं। रेल्वे से सेवानिवृत्त हैं।